एक दिव्य आलोक

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

प्रभु जगद्बन्धु। परमब्रह्म का एक दिव्य आलोक! मधु ज्योति। वह परमज्योति हैं सच्चिदानन्दघन सगुण विग्रह। ये भगवत्वेत्ता नहीं हैं, साक्षात् भगवत् सत्ता हैं। विशुद्ध सत्तालोक के चिन्मय प्रकाश रूप की रसधन मूर्त्ति हैं–भगवान श्रीकृष्ण के इस ब्रह्मांड के मध्य भूलोक में नवरूपायण हैं। इसीलिए इनका नाम है जगद्बन्धु–कारण, विश्वजगत् चराचर के साथ इनका बंधन चिरन्तन है। क्यों? कारण, इससे ही अखिल जगत् में समुदय विषयों का आविर्भाव हुआ। भगवान श्रीकृष्ण की सम्बोधि में समग्र ब्रह्मांड उद्भासित होता है। इसलिए जगद्बन्धु हुए 'जगत् के बन्धु'। जीव जगत् को मायिक क्लेश से उद्धार करने के लिए महाकारणमय दिव्य चेतना के चिन्मय आलोक के नित्य जगत् से ये अवतीर्ण हुए थे–इनके अपने भावों की भाषा में–"इस बार मैं दंडदाता नहीं हूँ, महाउद्धारण वटी हूँ" और द्वापर युग में श्रीमद्भागवत् गीता में उल्लिखित इनकी प्रतिज्ञा–

"यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"

–इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए प्रभु अवतरित हुए।

एकदा विधाता के दैव-योग से फरिदपूर जिले के गोविन्दपुर गाँव के दीननाथ एवं काफुरा गाँव की वामादेवी का शुभ-परिणय सुसम्पन्न हुआ। यह जैसे एक परम मांगलिक भावी भाग्यसूचित नित्य युक्त योग बन गया। विवाह के कुछ समय पश्चात् वामादेवी को 'गुरूचरण' नाम का एक पुत्र भूमिष्ट हुआ। परन्तु मात्र आठ मास की आयुष्काल में, समग्र परिवार के उस नयनमणि स्वरूप पुत्ररत्न का देहान्त हो गया। स्नेहमणि पुत्र की वियोग-वेदना ने पिता-माता के हृदय में बड़ा आघात किया। अत: शोकातुर दम्पति के सांत्वना स्वरूप, अल्प काल में, एक निरूपमा कन्या ने जन्म लिया–कन्या का नाम पड़ा 'कैलासकामिनी'। नि:सन्देह कैलासकामिनी पिता-माता का हृदयभार लाघव करते हुए अनेकानेक स्थान अधिकार कर लेती है। तथापि, पिता-माता को पुत्रलाभ की लालसा ह्रासित नहीं हुई वरंच और बढ़ गई। मानव हृदय का प्रेम मरणशील की वांछा कभी नहीं करता। दीननाथ व वामादेवी अमृतमय के ध्यान में, पुत्रकामना में प्रतिनियत अंतर का अपार्थिव वात्सल्य रस का तर्पण करने लगे। क्रमश: इस हृदय विदारक तर्पण ने अमृतलोक में स्पन्दन उठाया। ऐसे समय दीननाथ ने अपनी पत्नी और कन्यासह गोविन्दपुर का निवास समाप्त कर बंगभूमि के मुर्शिदाबाद जिले में जाह्नवी तटस्थ 'डाहापाड़ा' नामक स्थान पर अपना निवास स्थापित किया। इस डाहापाड़ा में ही परम भागवत् पंडित प्रवर दीननाथ न्यायरत्न महाशय तत्कालीन राजा के सभा-पंडित नियुक्त हुए। इस सूत्र में ही एकबार डाहापाड़ा में आगत ये नवदम्पति राजावाटी में एक शुभ-अन्नप्राशन महोत्सव में योगदान करने उपस्थित हुए। कर्मबहुल उत्सव दिवस के नानाविध परिश्रम के बाद क्लान्त नर-नारी जब श्रान्त देह में निद्रादेवी की गोद में विश्राम ले रहे थे, तब निस्तध रजनी में दीननाथ महाशय पत्नी वामादेवी सह एक कक्ष में निद्रित अवस्था में थे, ऐसे निद्राविभूत अवस्था में वामादेवी स्वप्न देखती हैं –"प्राणपति के कंठलग्न होकर वे गंगाघाट पर स्नान करने गयी हैं। स्नान सम्पन्न कर दोनों बैठकर वहाँ पूर्वाह्न की आह्निक कर रहे हैं; दूसरी ओर नदी के उसपार आकाश में चन्द्रमा नि:शेष में अपनी सुधा ढालकर अन्तर्हित हो रहा है, गंगाजल का हिल्लोल तरंगायित होकर गंगाके किनारे से थपेड़े खा रहा है और शुभ्र फैनयुक्त तरंग राशियाँ दोदुल्यमान अवस्था में उठती हुई तरंगों पर खेलती हुई अविरत चल रही है–इस शुभ्र फैनिल तरंग के मध्य आन्दोलित होकर एक प्रफुल्ल शतदल स्थिर-निश्चल उनके सम्मुख बहता हुया आ पहुँचा। तन्मध्य नवनीत कोमल स्वर्णवर्ण देवशिशु उत्तानभाव

में शायित था। दीननाथ उस दिव्य लक्षणयुक्त शिशु को स्वहस्त में उठाकर उसे वामादेवी के गोद में दे देते हैं। वामादेवी उस अपार्थिव धन को प्राप्त कर शिशु को स्ववक्ष से लिपटाते हुए दोनों हस्त द्वारा जकड़ लेती है। तत्क्षण शिशु के कोमल स्पर्श से जैसे उनका सर्वशरीर सिहरित होकर चैतन्यमय हो गया।" इसी मुहूर्त में वामादेवी की निद्रा भंग हो जाती है। तत्क्षण वे देखती हैं कि उस समय ब्राह्ममुहूर्त प्राय: उपस्थित है एवं आश्चर्य का विषय यह है कि वामादेवी का पूर्णगर्भ लक्षण प्रकाशित है। यह देखकर वामादेवी ने अपने पति को स्वप्नवृत्तान्त बताया। स्वप्न वृत्तान्त श्रवण करते करते दीननाथ भावाविष्ट हो पड़े एवं उसी क्षण पतिप्राणा सती को लेकर भावाविष्ट दीननाथ सब से अलक्ष्य अपने गृहाभिमुख रवाना हो जाते हैं। यंत्रचालित की भाँति दोनों गृह में आकर उपस्थित हुए। स्वप्न के आवेश से, वामादेवी के दो हस्त वक्षपर किसी शिशु को जकड़कर रखने की मुद्रा में रह गये थे एवं इस अवस्था में ही गृह में आकर दोनों ने सोचा–क्या यह सत्य है या यह एक स्वप्न है! तब वामादेवी ने अपने वक्ष से हाथ हटाकर देखा –कुछ नहीं है, यह एक स्वप्न ही है।

इस विषय में चिन्तन करते हुए उस अपरोक्ष अनुभूति की प्रगाढ़ में अचानक वामादेवी का सर्वशरीर अवसन्न होकर संज्ञा विहीन हो गया एवं वे अपने अंतर की तन्मयता में आत्मस्थ हो गई। अब दीननाथ की अवस्था भी एक ही जैसी है। फिर दीननाथ किसी प्रकार वामादेवी को लेकर स्खलित चरण से अपने गृह में प्रविष्ट होकर अपने कक्ष में शैय्या पर शायित हो जाते हैं। तत्पश्चात् वे दोनों ही निद्राविभूत हो जाते हैं। कितना समय बीत गया यह किसी को मालूम नहीं पड़ा। अचानक एक समय दीननाथ की सूक्ष्म संज्ञा जागृत हो गयी एवं उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि पार्श्व शैय्या में शायित वामादेवी के गर्भ से एक अतिउज्ज्वल दिव्य प्रकाश युक्त कोटि चन्द्रमा मंडल प्रकटित होकर शैय्या पर स्थित हुआ है एवं तन्मध्य एक दिव्य शिशु आविर्भूत होकर उत्तानभाव में हस्तपदादि संचालित करते हुए खेल रहा है! दीननाथ की स्थूल चेतना वापस आते ही वे देखते हैं कि वामादेवी भी जागृत हो गयी है। दोनों ने तब देखा कि कक्ष ज्योतिर्मय आलोक से उद्भासित हो उठा है एवं शैय्या में एक शिशु विद्यमान है!! यह दर्शन कर भावविह्वल अवस्था में निज आत्मज बोध से तब वामादेवी ने परमानन्द में उस परम शिशु को अपनी गोद में ले लिया। शिशु सुन्दर के अपार्थिव स्पर्श से वामादेवी के हृदय में विशुद्ध वात्सल्य की भावमय धारा उद्वेलित हो उठी एवं उन्होंने अनुभव किया कि उनका गर्भलक्षण तिरोहित हो गया है और उनके स्तनद्वय से अविरत दुग्धधारा का क्षरण होने लगा। –आश्चर्य! –यह मातृत्व व पुत्रत्व सम्बन्ध नित्यकाल का है। माता व पुत्र का यह सम्पर्क दिव्य के अनुशासन द्वारा परिचालित है। इस क्षेत्र में दिव्य की वात्सल्य रसभावना ही यथार्थ गर्भ है। यह अति अद्भुत होने पर भी परम सत्य है। इस संदर्शन से दीननाथ कुछ भी समझ नहीं पाये; सिर्फ निर्निमेष नयन से वे माता-पुत्र की ओर ताकते रहे।

इस काल में भी असम्भव का सम्भव साधित होता है। जो अज हैं, उनका जन्म–१६ बैशाख, सन् १२७८ शुक्रवार, सीतानवमी तिथि ई० २८ अप्रैल, ब्राह्ममुहूर्त में सूर्योदय के एक घंटा पूर्व, "जन्म माहेन्द्रक्षण में" पूष्पवन्तयोग में वामादेवी जब आत्मस्थ हुई थी तब भगवान पुरूषोत्तम श्रीहरि पूर्व प्रतिज्ञा रक्षणार्थ, सर्वजीव कल्याण व महाउद्धारण कर्म में प्रेम वितरण करने के लिए, महाप्राणमय आदित्य रश्मि की रसधारा और चान्द्रीसुधा का आश्रय लेकर गोलोक से पवित्र गंगाधारा रूप सुषुम्ना पथ अवलम्बन कर, इस ब्रह्मांड कटाह के उत्तर मेरूस्थित सत्यलोक या सहस्रार कमल में शतदल पद्मोपरि या श्रीगुरु चक्र पर आसीन अवस्था में प्रथम दशा में अवतीर्ण हुए। तत्पश्चात् महाचिन्मय आलोकोज्ज्वल सम्पन्न ज्योतिपुंजाकृति देह धारण कर, पवित्र गंगा की अंत:सलिला धारा सरस्वती रुपी ब्रह्मनाड़ी की धारा का अवलम्बन करते हुए सुषुम्ना स्थित आकाश-मार्ग में अवतरित होकर कारणजगत् अतिक्रम करते हुए हृदय सरोज विकसित करके पंच तत्वमय जगत् को अतिक्रम करके भूलोक के गंगावक्ष पर सूक्ष्मरुप में पीतवर्ण पंच तत्वमय श्रीश्रीहरिपुरुष, जगद्बन्धु के रुप में माता वामादेवी का गर्भ अवलम्बन कर वहाँ चिन्मय देह का निर्माण करते हुए, अलौकिक उपाय से स्वेच्छानुसार स्थूल दिव्य शरीर में धरातल पर प्रकटित हुए। इस शिशु का दर्शन कर वामादेवी भावविह्वल चित्त से एक अव्यक्त सम्मोहित अवस्था में अवस्थान करने लगी। द्वापर में माँ यशोमती ने जैसे योगमाया समाश्रिता होकर अनादि के आदि गोविन्द

भगवान श्रीकृष्ण को प्राकृत शिशु ज्ञान से स्तनदुग्ध व सरनवनी खिलाया था एवं प्रतिपालन किया था, वैसे ही न्यायरत्न गृहिणी वामादेवी भी जगद्बन्धु सुन्दर को पुत्ररूप में पाकर परम वात्सल्य से अन्धी होकर प्राकृत स्नेह द्वारा उन्हें अपने सन्तान बोध में ही पालन किया।

"अवतार का अवतरण", यह एक रहस्यपूर्ण विषय है। साक्षात् भगवत्कृपा लाभ न होने पर्यन्त अवतार के अवतरण के रहस्य का महात्म्य कोई अनुधावन करने में सक्षम नहीं होता। नित्यसिद्ध महात्मागण ही एकमात्र अवतार के अवतरण-महात्म्य के सम्बन्ध में अवगत हो सकते हैं। कारण, नित्यसिद्धगण भगवत्कृपा शक्ति व करूणा धारा से सिक्त भगवत् भक्त विशेष है। प्रकृत भक्त के वक्षपर सर्वदा ही भगवान का अधिष्ठान है। इस सूत्र में भक्त और भगवान अभेद है। तथापि भक्त को ज्ञात रहता है कि भगवान असीम सागर है और भक्त उसका तटिनी स्वरुप है। जो भगवत्कृपा से माया व योगमाया को सटीक रुप से पहचानने में सक्षम है, वे सगुण-निर्गुण ब्रह्म के परम स्वरुप को ज्ञात कर परमानन्द में भगवान की लीला का आस्वादन करने में सक्षम होते हैं।

(सहायक ग्रन्थ : श्रीश्री बंधुलीला तरंगिणी)

हिन्दी अनुवाद : मातृचरणाश्रिता श्रीमती सुशीला सेठीया

भ्रमर और लोभी कीड़ा

एकबार गोबर के कीड़े के साथ भ्रमर की मित्रता हुई थी, भ्रमर का आहार मधु। गोबर का कीड़ा गोबर खाता। गोबर के कीड़े को एकबार मधु खाने की इच्छा हुई, तो यह बात उसने अपने मित्र भ्रमर से कही। मित्र ने कहा–''और क्या, जरूर खिलाऊंगा।'' भ्रमर एकदिन मित्र को मधु खिलाने ले गया। जाते समय कीड़े ने सोचा–मधु खाने में कैसा होगा यह तो पता ही नहीं है, संयम छूट जायेगा! यह सोचकर गोबर की एक गोली मुँह में लेकर चला। भ्रमर अपने मित्र को एक कमल के पुष्प में बैठाया एवं मधु खाने का तरीका बताकर वह अन्यत्र चला गया मधु आहरण के लिये। कुछ समय उपरांत भ्रमर मित्र की खोज करते हुए आया और पूछा,''मित्र कैसे हो?'' कीड़े ने उत्तर देते हुये कहा,''मित्र, मधु पान तो कर रहा हूँ परन्तु इसमें गोबर जैसी ही गन्ध है।'' भ्रमर ने परिस्थिति को समझकर कीड़े को अपने मुँह दिखाने के लिए कहा। गोबर के कीड़े का मुँह देखने पर उसने पाया कि उसके मुँह में गोबर का गोला है।

भ्रमर बोला,''मित्र यह क्या किया! मुँह में गोबर रखकर कोई मधु पीता है क्या? मधु का स्वाद कैसे पाओगे? मुँह धोकर मधु पान करोगे तभी तुम्हें उसका यथार्थ स्वाद मिलेगा।'' मित्र की बात सुनकर गोबर के कीड़े ने मुँह धो लिया और मधु-पान करने बैठा–बैठा तो बैठा ही रहा! मधु पान करता ही रहा–उसे कुछ बोध ही न था।''स्वाद मिला!'' भ्रमरबाबू ने एकबार पूछने की कोशिश की परन्तु देखा कि मित्र को जवाब देने का भी समय नहीं है, वह मधु-पान में मग्न था। भ्रमर ने मित्र कि अवस्था देखकर सोचा, उसे स्वाद मिला है तो उसे परेशान न करना चाहिए , यह देखकर भ्रमर वहाँ से अन्यत्र चला गया।

इस तरह से गोबर का कीड़ा जिस कमल के फूल में मग्न होकर मधु-पान कर रहा था, वह कमल संध्या उपरांत बंद हो गया और उसी में वह कैद हो गया। प्रभात होते ही शिव-मंदिर के एक पुजारी ने शिव पूजा के लिए उस कमल के पुष्प का चयन किया। पुजारी के पूजा के समय भी वह गोबर का कीड़ा मधु-पान में लीन था, पूजा उपरांत पुजारी ने शेष निर्माल्य के साथ नदी में उस कमल का भी विसर्जन कर दिया। नदी में कमल बहने लगा। दूसरी ओर मित्र को यथा स्थान में न मिलने पर उसकी खोज में निकले भ्रमर ने देखा कि मधुमत्त गोबर का बाबू नदी की धारा में बह रहा है। भ्रमर ने उसे पुकारते हुए आवाज लगाई 'बाबू कैसा है? अब आओ'। लेकिन बाबू मधु-पान छोड़ उस कमल से नहीं आये।

यही अवस्था विषयीलोगों की होती है–विषयों को लेकर यदि आत्ममधु पान करना चाहे तो स्वाद नहीं पा सकता–परन्तु यदि विषयों का त्याग करे तो रस का स्वाद पा सकते हैं और अगर एकबार किसी को स्वाद मिल जाये तो इस गोबर के कीड़े की तरह वह बेहोश हो जाते हैं; एवं इस विषय जगत् को भुल जाते है। यहाँ मधु का पान करने वाला भ्रमर मुक्त पुरूष है और गोबर का कीड़ा विषयी जीव है।

–मातृचरणाश्रित श्री मोहित शुक्ल